सिविल विविध

एस. बी. कपूर और आर. एस. नरूला न्यायाधीशों के समक्ष

मनमोहन सिंह टंडन, याचिकाकर्ता

बनाम

श्री मनमोहन सिंह गुजराल और अन्य, उत्तरदाता

1968 का सिविल रिट 2264

6 दिसंबर, 1968

*भारत का संविधान (1950) - अनुच्छेद 233 और 372 - पंजाब न्यायालय ए सीटी (1918 का VI) - धारा 20, राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के साथ परामर्श प्रदान नहीं करते हुए मैं एक जिला न्यायाधीश की नियुक्ति कर रहा हूं - धारा - क्या अनुच्छेद 233 के दायरे से बाहर है - **अनुच्छेद 233** - अनुच्छेद **233 (1)** के तहत राज्यपाल को सौंपे गए कार्य - क्या राज्य सरकार द्वारा राज्यपाल के नाम पर कार्य किया जा सकता है - संघ राज्य क्षेत्रों की स्थिति - क्या भिन्न है।*

*पंजाब पुनर्गठन अधिनियम (1966 का XXXI) - धारा 91 - मुख्य आयुक्त द्वारा केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के लिए एक जिला न्यायाधीश की नियुक्ति - **क्या** वैध है।*

और रूप **इसमें कोई संदेह नहीं है कि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 में "राज्य सरकार" शब्द का उपयोग किया गया है, जबकि संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) में "राज्यपाल" शब्द का उपयोग किया गया है। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति करने के लिए राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के साथ किसी भी परामर्श की आवश्यकता नहीं है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) में राज्यपाल द्वारा इस तरह के परामर्श की आवश्यकता है। एक शर्त मिसाल के रूप में। हालांकि, अंतर के ये दो बिंदु अधिनियम की धारा 20 को असंवैधानिक नहीं बनाएंगे। संविधान के अनुच्छेद 372 के खंड (1) का प्रभाव दो तरफा (i) है, कि संविधान के प्रारंभ होने से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में लागू सभी कानून तब तक लागू रहते हैं जब तक कि किसी सक्षम विधान ी या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरस्त या संशोधित नहीं किया जाता है; और (ii) पूर्व-संवैधानिक कानूनों को लागू करना "संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन है। इसका परिणाम यह है कि यदि संविधान में किसी अन्य पूर्व-विद्यमान कानून में निहित प्रावधान के अनुरूप प्रावधान है, लेकिन दो प्रावधानों की आवश्यकताएं अलग-अलग हैं, तो यह संवैधानिक प्रावधान है जो संविधान-पूर्व अधिनियम में निहित वैधानिक प्रावधान पर प्रबल होगा। यदि दोनों प्रावधान असंगत हैं, तो वैधानिक प्रावधान**

को माना जाएगा *अल्ट्रा वाइरस* संवैधानिक प्रावधान। यदि, हालांकि, भिन्नता या अंतर केवल संविधान द्वारा लगाए गए कुछ अतिरिक्त आवश्यकताओं में निहित है, तो वैधानिक प्रावधान को केवल संवैधानिक प्रावधान के अधीन पढ़ा जाना चाहिए, और इसे उस सीमा तक प्रतिस्थापित माना जाता है। इसलिए, पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 नहीं है। *अल्ट्रा वाइरस* संविधान का अनुच्छेद 233 (पैरा 5)

***संविधान* के अनुच्छेद 233 (1) के प्रावधानों के विधायी इतिहास और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 254 के अधिनियमन के पीछे के इतिहास के साथ-साथ इसके दायरे को ध्यान में रखते हुए**

एक ओर राज्यपालों की कतिपय विनिर्दिष्ट संवैधानिक शक्तियों और दूसरी ओर राज्यपाल की अध्यक्षता वाली राज्य सरकार की कार्यकारी शक्तियों के बीच अंतर यह प्रतीत होता है कि मंत्रिपरिषद की सहायता से राज्यपाल द्वारा प्रशासित राज्यों में, राज्यपाल स्वयं संविधान द्वारा नामित नियुक्ति प्राधिकारी है और संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) द्वारा उसे सौंपे गए कार्य किसके द्वारा निष्पादित नहीं किए जा सकते हैं? राज्य सरकार केवल राज्यपाल के नाम पर; लेकिन जहां तक संघ राज्य क्षेत्रों का संबंध है जिनमें कोई मंत्रिपरिषद नहीं है, स्थिति भिन्न है। इस आशय का तर्क कि संविधान के अनुच्छेद 233 में प्रयुक्त विशेष वाक्यांशविज्ञान के पीछे मंशा मंत्रियों को यथासंभव जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति से बाहर रखना है, ऐसे केंद्र शासित प्रदेशों पर लागू नहीं होगा क्योंकि किसी भी मंत्रिस्तरीय हस्तक्षेप का कोई सवाल ही नहीं पैदा हो सकता है और यह भारत के राष्ट्रपति हैं जो या तो स्वयं या एक प्रशासक के माध्यम से क्षेत्र का प्रशासन करते हैं। ऐसे प्रशासक को अपने कार्य सौंप सकता है। (पैरा 12)

पंजाब **पुनर्गठन अधिनियम की धारा 91 के तहत, यह केंद्र सरकार है जिसके पास केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के संबंध में प्राधिकरण, अधिकारी या व्यक्ति को निर्दिष्ट करने की शक्ति है, जो 1 नवंबर, 1966 (नियत दिन) से और प्रभावी रूप से, ऐसे कार्यों का उपयोग करने के लिए सक्षम होगा जो उस दिन लागू किसी भी कानून के तहत प्रयोग योग्य हैं जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में उल्लेख किया जा सकता है। इस संबंध में। केंद्र सरकार ने अधिसूचना जारी कर चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त को राज्य सरकार के सभी कार्यों का उपयोग करने वाले अधिकारी के रूप में नामित किया है, मुख्य आयुक्त द्वारा जिला न्यायाधीश की नियुक्ति पूरी तरह से अधिकृत है। अधिनियम की धारा 91 के प्रावधानों के बावजूद, भारत के राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 239 (1) के तहत मुख्य आयुक्त को केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के प्रशासन के संबंध में अपनी शक्तियां प्रत्यायोजित कर सकते हैं और कर चुके हैं। इसलिए, संघ राज्य क्षेत्र चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त द्वारा जिला न्यायाधीश की नियुक्ति में कोई अमान्य नहीं है। (पैरा 15)**

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226, 227 और ***228*** *के तहत याचिका* ***में प्रार्थना की गई है कि*** *यथास्थिति वारंट की प्रकृति में एक रिट या* ***कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादी संख्या 12 की नियुक्ति की अधिसूचना को रद्द कर दिया जाए।*** *1 जिला न्यायाधीश, चंडीगढ़ के रूप में और प्रतिवादी संख्या 10 को निर्देश देना। (ग) यह दर्शाना कि वह किस प्राधिकार के आधार पर जिला न्यायाधीश, चंडीगढ़ का पद धारण कर रहा था या वैकल्पिक रूप से प्रार्थना करता है कि संविधान के अनुच्छेद 228 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते*

*हुए **प्रतिवादी संख्या 12 के** बीच का मामला दर्ज किया जाए। **4** और याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 4 से वापस ले लिया जाए।और या तो यह माननीय न्यायालय स्वयं मामले का निपटान करे या संविधान के अनुच्छेद 233 और 239 **की व्याख्या के अनुसार कानून के प्रश्न का निर्धारण करे और मामले को उचित अधीनस्थ न्यायालय को वापस कर दे।***

याचिकाकर्ता की ओर से वकील एस. खोजी और बलबीर सिंह बिंद्रा
पंजाब के एडवोकेट-जनरल की वकील अबनाशा सिंह , **प्रतिवादी संख्या** 1 **से** 3 **ओर** से **और** प्रतिवादी संख्या **4 के वकील बीएस भाटिया।**

<u>निर्णय</u>

(1) पंजाब सरकार के स्थायी वरिष्ठ स्केल सुपीरियर ज्यूडिशियल सर्विस अधिकारी मनमोहन सिंह गुजराल की प्रतिवादी संख्या 1 की चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति को मनमोहन सिंह टंडन याचिकाकर्ता (जो श्रीमती राजिन्दर कौर द्वारा दायर उनकी शादी को रद्द करने के लिए लंबित याचिका में विपरीत पक्ष हैं) द्वारा इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है। प्रतिवादी संख्या 4, जिला न्यायाधीश, चंडीगढ़ की अदालत में, निम्नलिखित आधारों पर: –

(1) पंजाब न्यायालय अधिनियम (1918 का 6) की धारा 20, जिसके तहत 1 अप्रैल, 1968 (अनुलग्नक 'ए') की अधिसूचना, जिसमें प्रतिवादी नंबर 1 को चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया है, *संविधान के अनुच्छेद 233 (1) के* विपरीत है;

(2) चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 233 (1) का उल्लंघन करते हुए की गई है, क्योंकि ऐसा करने से पहले उच्च न्यायालय से परामर्श नहीं किया गया है;

(3) मुख्य आयुक्त, चण्डीगढ़, जो नियुक्ति करने का दावा करता है, के पास जिला न्यायाधीश नियुक्त करने का संविधान के अंतर्गत कोई क्षेत्राधिकार या अधिकार नहीं है और यह शक्ति जो भारत के राष्ट्रपति के रूप में संघ राज्य क्षेत्र ओ (चण्डीगढ़ में) के लिए निहित है, संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त को संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त को प्रत्यायोजित नहीं की गई है; और

(4) उत्तरदाता एनएनओ.11 आई के रूप में जिला आईजेयूडी, चंडीगढ़ की नियुक्ति वास्तव में नहीं की गई है; भारत के राष्ट्रपति या यहां तक कि

मुख्य आयुक्त, चंडीगढ़ द्वारा, और लागू अधिसूचना इस हमले से अछूती नहीं है क्योंकि इसमें संविधान के अनुच्छेद 166 के खंड (3) का संरक्षण नहीं है, क्योंकि केंद्र शासित प्रदेश अधिनियम, (1963 का 20) की धारा 46 चंडीगढ़ पर लागू नहीं होती है।

(2) नवंबर, 1966 से पंजाब पुनर्गठन अधिनियम (1966 का 31) (इसके बाद पुनर्गठन अधिनियम कहा जाता है) की धारा 4 द्वारा चंडीगढ़ के केंद्र शासित प्रदेश 2 को पूर्ववर्ती पंजाब राज्य से अलग कर दिया गया था। इसके बाद क्षेत्र में शामिल थे,

उक्त संघ राज्य क्षेत्र में तत्कालीन विद्यमान पंजाब राज्य का हिस्सा बनना बंद हो गया। अधिसूचना सं. गृह मंत्रालय, नई दिल्ली का एसओ 3269, पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा 4 के तहत 1 नवंबर, 1966 को भारत के राजपत्र असाधारण में जारी किया गया था। अधिसूचना (अनुपत्र ख) में *अन्य बातों के साथ-साथ प्रावधान* किया गया है -

"और जबकि पूर्वोक्त किसी भी कानून के तहत राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियां अब केंद्र सरकार द्वारा प्रयोग की जाती हैं;

अब, इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 239 के खंड (1) और इस संबंध में उन्हें सक्षम करने वाली अन्य सभी शक्तियों के अनुसरण में, राष्ट्रपति इसके द्वारा निर्देश देते हैं कि, अपने नियंत्रण के अधीन रहते हुए और अगले आदेश तक, चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र का प्रशासक, उक्त क्षेत्र के संबंध में, 1 नवंबर से उक्त क्षेत्र का प्रयोग और निर्वहन करेगा। 1966 में ऐसे किसी भी कानून के तहत राज्य सरकार की शक्तियां और कार्य।

उसी दिन, अर्थात् 1 नवम्बर, 1966 को भारत सरकार ने गृह मंत्रालय की अधिसूचना सं 2006 जारी की थी। जी.एस.आर. 1875 (अनुलग्नक *R-2'1) संविधान के अनुच्छेद 239 के खंड (1) के तहत उसी दिन भारत के राजपत्र में निम्नलिखित शब्दों में प्रकाशित किया गया था: –

संविधान के अनुच्छेद 239 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति निर्देश देते हैं कि केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त के नाम पर किए गए और निष्पादित सभी आदेश और अन्य लिखत, एक सचिव, एक उप सचिव, एक अवर सचिव के हस्ताक्षर से प्रमाणित होंगे। चंडीगढ़ प्रशासन के किसी भी विभाग में सहायक सचिव।

(3) 1 फरवरी, 1968 को न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशों ने प्रतिवादी संख्या 1 को जिला और सत्र न्यायाधीश, चंडीगढ़ के रूप में तैनात करने का निर्देश दिया और इस न्यायालय के रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर के तहत

मनमोहन सिंह टंडन **बनाम** श्री मनमोहन सिंह गुजराल, आदि।
(नरूला, जे।

इस न्यायालय का एक आदेश जारी किया गया (जिसकी प्रति अनुबंध आर-1' है), और उक्त आदेश की प्रतियां तत्कालीन जिला और सत्र न्यायाधीश को दी गईं। चंडीगढ़ (श्री जसमेर सिंह) चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन के गृह सचिव और पंजाब सरकार के विभिन्न अन्य विभागों के लिए। इसके बाद सत्र न्यायाधीश और जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति की औपचारिक अधिसूचना,

* मनमोहन सिंह टंडन **बनाम** श्री मनमोहन सिंह गुजराल आदि।
(नरूला, जेजे

चंडीगढ़ को भारत सरकार के राजपत्र (चंडीगढ़ प्रशासन) में 1 अप्रैल, 1968 (रिट याचिका के अनुलग्नक 'ए' में) में निम्नलिखित शर्तों में जारी किया गया था: -

> "संख्या 2651-आर-एल (2 एच)-68/6952.— धारा 9 की उप-धारा (1) द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए। **दंड** प्रक्रिया संहिता, 1898 के तहत चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के परामर्श से श्री मनमोहन सिंह गुजराल को चंडीगढ़ सत्र प्रभाग के सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया है।
>
> पंजाब न्यायालय अधिनियम, 1918 की धारा 20 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, जैसा कि 1922 के अधिनियम IX द्वारा संशोधित किया गया है, चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त ने श्री मनमोहन सिंह गुजराल को चंडीगढ़ के सिविल जिले के लिए जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया है।

प्रतिवादी नंबर 1 ने वास्तव में 19 फरवरी, 1968 (ए.एन.) से चंडीगढ़ के जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में पदभार संभाला और तब से इसी रूप में कार्य कर रहा है। याचिकाकर्ता के साथ उसकी शादी को रद्द करने के लिए प्रतिवादी नंबर 4 की याचिका में, याचिकाकर्ता का लिखित बयान 12 जुलाई, 1968 को दायर किया गया था, जिसमें उन्होंने इस आशय की प्रारंभिक आपत्ति ली थी कि चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति वैध नहीं थी। उपरोक्त प्रारंभिक मामले पर जिला न्यायाधीश द्वारा कोई निर्णय दिए जाने से पहले, वर्तमान याचिका 22 जुलाई, 1968 को संविधान के अनुच्छेद 226, 227 और 228 के तहत दायर की गई थी। इस आधार पर कि मामले में पंजाब कोर्ट अधिनियम की धारा 20 की वैधता और संवैधानिक रूप से संबंधित प्रश्न शामिल है, और उक्त प्रश्न का फैसला प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह खुद उक्त अधिनियम का एक प्राणी है। रिट याचिका में अनुरोध प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देश देते हुए यथास्थिति वारंट की प्रकृति में एक रिट जारी करने के लिए है, ताकि इस न्यायालय को वह अधिकार दिखाया जा सके जिसके द्वारा वह जिला न्यायाधीश, चंडीगढ़ का पद धारण कर रहा है। याचिका में वैकल्पिक प्रार्थना यह है कि प्रतिवादी संख्या 4 और याचिकाकर्ता के बीच जिला न्यायाधीश, चंडीगढ़ की अदालत में लंबित सिविल कार्यवाही को इस न्यायालय में वापस ले लिया जाए।

संविधान के अनुच्छेद 228 के तहत और संविधान के अनुच्छेद 233 और 239 की व्याख्या से संबंधित कानून के उपर्युक्त प्रश्न का निर्धारण करने के बाद या तो यहां निपटाया जा सकता है या उचित अधीनस्थ न्यायालय को लौटाया जा सकता है। याचिका को 23 जुलाई, 1968 को मोशन बेंच (महाजन और जैन, जेजे) द्वारा एक खंडपीठ में स्वीकार किया गया था। रिट याचिका के उत्तर में दायर श्री दलजीत सिंह, आईएएस, वित्त सचिव, संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन, चंडीगढ़ के हलफनामे में अन्य *बातों के साथ-साथ* निम्नलिखित कहा गया है -

> "यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी नंबर 1 को माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के परामर्श से कानून के अनुसार जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था।
>
> पीठ ने कहा, "वास्तव में नियुक्ति (प्रतिवादी संख्या एक की) माननीय उच्च न्यायालय पंजाब और हरियाणा के परामर्श से की गई थी। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश और माननीय न्यायाधीशों द्वारा उस पत्र की प्रति जिसके माध्यम से प्रतिवादी नंबर 1 को चंडीगढ़ के जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में तैनात किया गया था, यहां अनुलग्नक आर-1 के रूप में संलग्न है।
>
> "पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 के तहत, एक जिला न्यायाधीश की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है और सभी कार्यकारी आदेश राज्यपाल के नाम पर व्यक्त किए जाते हैं। केंद्र शासित प्रदेश के प्रशासक को राज्य सरकार की शक्तियों और कार्यों के साथ निहित किया गया है, और इस तरह, प्रशासक को पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 के तहत राज्य सरकार माना जाएगा, और वह जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति करने के लिए पूरी तरह से सक्षम था।
>
> (4) प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के उपर्युक्त रिटर्न में यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ में किए गए दावे गलत हैं। रिट याचिका के पैरा 5 के उप-पैरा (डी) में यह आरोप लगाया गया है कि आक्षेपित अधिसूचना में निहित आदेश मुख्य आयुक्त या भारत के राष्ट्रपति द्वारा पारित नहीं किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 239 के खंड (1) के तहत 1 नवंबर, 1966 की अधिसूचना की प्रतियां

लाख

मनमोहन सिंह टंडन *बनाम* श्री मनमोहन सिंह गुजराल, आदि।

(नरूला, जे।

उच्च न्यायालय, दिनांक 19 फरवरी; 1968 (अनुलग्नक 'आर-2' और 'आर-एल') को रिटर्न के साथ दाखिल किया गया है।

(5) श्री आईएमआर। बी.1 एस.जी.खोजी,1 मैं एक विद्वान के रूप में कार्य करता हूं; याचिकाकर्ता ने कहा कि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20, जो निम्नलिखित शर्तों में है, असंवैधानिक है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 233 (1) के तहत अपेक्षित उच्च न्यायालय के परामर्श का प्रावधान नहीं करता है और जैसा कि यह "राज्य सरकार" को जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के लिए अधिकृत करता है, हालांकि ऐसी नियुक्तियां करने की शक्ति राज्य के राज्यपाल में संविधान के उपरोक्त अनुच्छेद द्वारा निहित है: —

"राज्य सरकार जितने भी व्यक्ति जिला न्यायाधीश बनने के लिए आवश्यक समझे, नियुक्त करेगी, और प्रत्येक जिले में ऐसे एक व्यक्ति को जिले के जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करेगी:

परन्तु एक ही व्यक्ति, यदि राज्य सरकार उचित समझे, को दो या अधिक जिलों का जिला न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है।

संविधान के अनुच्छेद 233 का खंड (1) इस प्रकार है:-

"व्यक्तियों की नियुक्ति, और उनकी पोस्टिंग और पदोन्नति? किसी राज्य में जिला न्यायाधीश राज्य के राज्यपाल द्वारा उस राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के परामर्श से बनाए जाएंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 में "राज्य सरकार" शब्द का उपयोग किया गया है, जबकि संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) में "राज्यपाल" शब्द का उपयोग किया गया है। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति करने के लिए उच्च न्यायालय के साथ राज्य सरकार द्वारा किसी भी परामर्श की आवश्यकता नहीं है, लेकिन संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) में राज्यपाल द्वारा इस तरह के परामर्श की आवश्यकता < है। जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए एक शर्त मिसाल के रूप में। ऊपर उल्लिखित अंतर के दो बिंदु, हालांकि, पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 को असंवैधानिक नहीं बनाएंगे। संविधान का अनुच्छेद 372 (1) इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 395 में उल्लिखित अधिनियमों के इस संविधान द्वारा निरसन के बावजूद, लेकिन निम्नलिखित के अधीन

इस संविधान के अन्य प्रावधान ^ इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले भारत के क्षेत्र में लागू सभी कानून तब तक लागू रहेंगे जब तक कि सक्षम विधायिका या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरस्त या संशोधित नहीं किया जाता है।

मेरी राय में संविधान के अनुच्छेद 372 के खंड (1) का प्रभाव दो तरफा है, अर्थात्, (i) संविधान के प्रारंभ होने से ठीक पहले भारत के राज्यक्षेत्र में लागू सभी कानून तब तक लागू रहते हैं जब तक कि सक्षम विधायिका या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरस्त या संशोधित नहीं किया जाता है; और (ii) संविधान-पूर्व कानूनों का ऐसा लागू रहना "संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन" है। परिणाम यह है कि यदि संविधान में किसी अन्य पूर्व-विद्यमान कानून में निहित प्रावधान के अनुरूप कोई प्रावधान है, लेकिन दोनों प्रावधानों की आवश्यकताएं अलग-अलग हैं, तो यह संवैधानिक प्रावधान है जो पूर्व-संविधान अधिनियम में निहित वैधानिक प्रावधान पर प्रबल होगा। यदि प्रावधान असंगत हैं, तो वैधानिक प्रावधान को संवैधानिक प्रावधान के विपरीत माना जाएगा । हालांकि, यदि भिन्नता या अंतर केवल संविधान द्वारा लगाई गई कुछ अतिरिक्त आवश्यकता में निहित है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, तो वैधानिक प्रावधान को केवल संवैधानिक प्रावधान के अधीन पढ़ा जाना चाहिए, और उस सीमा तक प्रतिस्थापित माना जाता है। *दक्षिण भारत निगम* (पी) *लिमिटेड* v. *सचिव, राजस्व बोर्ड, त्रिवेंद्रम* और अन्य **ए.आई.आर. 1964 एस.सी.**में यह कहा गया था कि अनुच्छेद 372 के खंड (1) में "संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन" शब्दों की एक उचित व्याख्या की जानी चाहिए, एक: व्याख्या जो संविधान के निर्माताओं के इरादे को पूरा करेगी, और जो ऐसे मामलों में संवैधानिक प्रथा के अनुरूप है। उनके लॉर्डशिप ने कहा :-

"अनुच्छेद 395 के निरसन के बावजूद एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा पहले से मौजूद कानूनों को जारी रखने की बात कही गई है; और अनुच्छेद में "अन्य" अभिव्यक्ति केवल विधायी क्षमता से निपटने वाले प्रावधानों के अलावा अन्य प्रावधानों पर लागू हो सकती है। एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाया गया संविधान-पूर्व कानून, हालांकि यह संविधान के तहत अपनी विधायी योग्यता खो चुका है, लागू रहेगा, बशर्ते कानून संविधान के 'अन्य प्रावधानों' का उल्लंघन न करे। शब्द

"संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन' का अर्थ है कि यदि पहले से

मौजूद कानून और संविधान के किसी प्रावधान या प्रावधानों के बीच कोई असंगत संघर्ष है, तो संविधान उस असंगति की सीमा तक प्रबल होगा।

(6) कानून की इस स्थिति में याचिकाकर्ता के वकील के लिए यह तर्क देना सही नहीं लगता कि पंजाब कोर्ट अधिनियम की धारा 20 असंवैधानिक है। किसी भी स्थिति में, यदि संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) की आवश्यकताओं को पूरा किया गया है, तो वकील की इस प्रस्तुति पर कुछ भी नहीं होगा। प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति के आदेश को केवल इसलिए रद्द या रद्द नहीं किया जा सकता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) का उल्लेख करने के बजाय संबंधित अधिसूचना में पंजाब न्यायालय अधिनियम की धारा 20 का उल्लेख किया गया है। यदि दूसरी ओर, वर्तमान मामले में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए अपेक्षित संवैधानिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया है, तो नियुक्ति के आदेश को रद्द करना होगा, भले ही अधिसूचना में संविधान के अनुच्छेद 233 (1) का उल्लेख किया गया हो।

(7) न ही हम श्री खोजी की दूसरी दलील में इस आशय का कोई बल पा सके हैं कि चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति करने में उच्च न्यायालय से परामर्श नहीं किया गया था। प्रतिवादी नंबर 1 को चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में तैनात करने का आदेश 19 फरवरी, 1968 को उच्च न्यायालय द्वारा ही पारित किया गया था। 19 फरवरी, 1968 के आदेश के तहत "नोट" (अनुलग्नक 'आर-एल') निम्नानुसार है: –

आदेश में कहा गया है, 'मनमोहन सिंह गुजराल को अपना वर्तमान पद छोड़ने के बाद तत्काल चंडीगढ़ के जिला एवं सत्र न्यायाधीश का पदभार संभालना चाहिए।

उक्त आदेश पर दूसरा अनुमोदन इस प्रकार है:-

गृह सचिव को सूचना और आवश्यक कार्रवाई के लिए चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन, चंडीगढ़ को भेजी गई है।

यह अनुरोध किया जाता है कि श्री मनमोहन सिंह गुजराल की चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति, जिस तारीख से वह पदभार ग्रहण करेंगे, कृपया अधिसूचित की जाए।

उच्च न्यायालय के पत्र के निकाय में कहा गया है:-

> "माननीय मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशों को निम्नलिखित पोस्टिंग करते हुए प्रसन्नता हो रही है: –
>
> श्री मनमोहन सिंह गुजराल, पंजाब सरकार, चंडीगढ़ के कानूनी स्मरणकर्ता को जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया है, जबकि श्री जसमेर सिंह को पंजाब सरकार के कानूनी स्मरणकर्ता के रूप में नियुक्त किया गया है।

उपर्युक्त पत्र (अनुलग्नक आर-टी) प्राप्त होने पर, गृह सचिव, चंडीगढ़ प्रशासन ने सरकारी राजपत्र में प्रकाशन के लिए दो अधिसूचनाएं अगे्रषित कीं। ये अधिसूचनाएं 19/20 फरवरी, 1968 को तैयार की गई थीं, लेकिन इन्हें मार्च, 1968 में प्रकाशन के लिए भेजा गया था और वास्तव में इन्हें 1 अप्रैल, 1968 के सरकारी राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। जबकि सत्र न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति से संबंधित अधिसूचना में, "पंजाब और हरियाणा के उच्च न्यायालय के परामर्श से" शब्द प्रकाशित किए गए थे, उक्त शब्द किसी तरह जिला न्यायाधीश के रूप में पहले प्रतिवादी की नियुक्ति से संबंधित अधिसूचना में छूट गए थे, हालांकि दोनों अधिसूचना उच्च न्यायालय के एक ही संचार के अनुसरण में जारी की गई थी। और सरकारी राजपत्र के एक ही पृष्ठ पर प्रकाशित किए गए थे। हालांकि, यह महत्वहीन है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 233 का खंड (1) जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय के साथ परामर्श को एक शर्त उदाहरण बनाता है, लेकिन निश्चित रूप से यह कहने के लिए नियुक्ति की औपचारिक अधिसूचना की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा परामर्श हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिसूचना में उच्च न्यायालय के साथ परामर्श के तथ्य का उल्लेख किया जाना चाहिए ताकि वर्तमान मामले में उठाए गए अनावश्यक विवाद से बचा जा सके, लेकिन अधिसूचना में उल्लिखित परामर्श के तथ्य **की** कमी से नियुक्ति को अमान्य नहीं किया जाएगा। इस बात पर कि क्या चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में पहले प्रतिवादी को नियुक्त करने के लिए उच्च न्यायालय से वास्तव में परामर्श किया गया था या नहीं, इसमें कोई संदेह नहीं है। याचिकाकर्ता ने इतने शब्दों में यह भी नहीं बताया है कि वास्तव में उच्च न्यायालय से इतनी सलाह नहीं ली गई थी। उत्तरदाताओं ने अपनी वापसी में स्पष्ट रूप से और स्पष्ट रूप से कहा है कि अपेक्षित परामर्श किया गया था। अन्यथा भी यह समझ से परे है कि जब सत्र न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय के साथ परामर्श किया गया था, तो जिला न्यायाधीश के रूप में उनकी नियुक्ति के लिए ऐसा कोई परामर्श नहीं किया गया था। चीफ के नाम से जारी आदेश के तहत नोट 19 फरवरी, 1968 को उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और न्यायाधीशों ने और जिन अनुमोदनों के तहत चंडीगढ़ प्रशासन को पत्र अग्रेषित किया गया था, उनमें से एक में, मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी नंबर 1 की न केवल सत्र न्यायाधीश के

रूप में, बल्कि चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में उक्त नियुक्ति को स्पष्ट रूप से मंजूरी दी थी। इसलिए, चंद्र मोहन बनाम भारत मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का विस्तार से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है । **चंद्र मोहन बनाम** ***उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*** **ए.आई.आर. 1956 एस.सी. 1987,** जिसका संदर्भ श्री खोजी द्वारा यह दर्शाने के लिए दिया गया था कि राज्यपाल द्वारा जिला न्यायाधीश की नियुक्ति की शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय के साथ उनके परामर्श से किया जाता है, अर्थात्, राज्यपाल किसी व्यक्ति को उच्च न्यायालय के परामर्श से ही जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। न तो उपरोक्त कानून का प्रस्ताव विवादित था और न ही इसे वास्तव में विवादित किया जा सकता है। उच्च न्यायालय से परामर्श किए बिना राज्यपाल द्वारा की गई जिला और सत्र न्यायाधीश की कोई भी नियुक्ति पूरी तरह से अवैध और शून्य होगी। लेकिन जैसा कि हमने पहले ही पाया है, चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति उच्च न्यायालय के परामर्श से की गई थी, और इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा इस संबंध में उस नियुक्ति पर किए गए हमले से पूरी तरह से मुक्त है।

(8) वकील ने दलील दी कि नियुक्ति वास्तव में चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त द्वारा भी नहीं की गई थी। इस संबंध में रिट याचिका के पैराग्राफ 5 के उप-पैराग्राफ (डी) के अंतिम वाक्य में लगाए गए याचिकाकर्ता के आरोप को प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा दायर रिटर्न के संबंधित पैराग्राफ में स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है। किसी भी घटना में, इस बिंदु पर विस्तार से बात करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के विद्वान वकील सरदार अबनाशा सिंह ने विवादित नियुक्ति से संबंधित चंडीगढ़ प्रशासन के मूल प्रासंगिक रिकॉर्ड को निष्पक्ष और स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखा, जो रिकॉर्ड दर्शाता है कि जब श्री मनमोहन सिंह गुजराल की जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति का प्रस्ताव था, मूल रूप से उनकी व्यक्तिगत फाइल इस न्यायालय द्वारा चंडीगढ़ प्रशासन को भेजी गई थी, जिसे गृह सचिव श्री दामोदर दास ने देखा, जिन्होंने 17 फरवरी, 1968 को इस संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की -

> उन्होंने कहा, 'नीचे श्री मनमोहन सिंह गुजराल की वार्षिक गोपनीय टिप्पणी रखी गई है। रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय ने बताया मुझे लगता है कि पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री श्री गुमाम सिंह द्वारा दी गई अंतिम रिपोर्ट उत्कृष्ट थी। अधिकारी का रिकॉर्ड ठीक लग रहा है। यदि सी.सी. सहमत होते हैं तो हम उन्हें केंद्र शासित प्रदेश के वर्तमान जिला और सत्र न्यायाधीश श्री जसमेर सिंह के स्थान पर स्वीकार कर सकते हैं।

जब उपरोक्त नोट को केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के तत्कालीन मुख्य आयुक्त श्री एमएस रंधावा को चिह्नित किया गया था, तो उन्होंने फाइल पर अपनी लिखावट में लिखा था: –

"मैं सहमत हूँ।

एम. एस. रंधावा

19 फरवरी, 1968।

स्वयं मुख्य आयुक्त के उपर्युक्त आदेश के बाद विधि सचिव श्री शिवचरण दास बजाज ने फाइल में निम्नलिखित निर्देश दिए -

चंडीगढ़ जिला के जिला न्यायाधीश और चंडीगढ़ सत्र प्रभाग के सत्र न्यायाधीश के रूप में श्री मनमोहन सिंह गुजराल की नियुक्ति के संबंध में अधिसूचनाएं गृह सचिव के हस्ताक्षर के लिए नीचे रखी गई हैं।

जैसा कि पहले ही कहा गया है, संबंधित अधिसूचनाएं उसके बाद नियत समय में जारी की गई थीं। इस रिकॉर्ड के सामने, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया है, यह कहना असंभव है कि प्रतिवादी नंबर 1 को वास्तव में चंडीगढ़ प्रशासन के तत्कालीन गृह सचिव श्री दामोदर दास द्वारा नियुक्त किया गया था, और मुख्य आयुक्त ने खुद उन्हें नियुक्त नहीं किया था।

(9) श्री मान 3 के शेष दो निवेदन ों को मैंने आपस में जोड़ा कि उनसे एक साथ निपटा जाना चाहिए। उन प्रस्तुतियों से संबंधित विद्वान वकील का तर्क यह है। अनुच्छेद 233 का खंड (1) राज्य सरकार के विपरीत राज्यपाल में जिला न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार प्रदान करता है। राज्यपाल और राज्य सरकार एक जैसी चीजें नहीं हैं। संविधान सभा ने संविधान का निर्माण करते समय जानबूझकर संविधान के अनुच्छेद 233 (1) में "राज्य सरकार" शब्द का उपयोग करने से परहेज किया और "राज्यपाल" शब्द का उपयोग किया ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि यह राज्यपाल है जिसे अपने व्यक्तिगत निर्णय में एक जिला न्यायाधीश नियुक्त करना है और अपने मंत्रियों की सलाह पर नहीं। चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में, राज्यपाल की शक्तियां

संविधान के तहत भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं। यह भारत के राष्ट्रपति के लिए खुला है कि वह संविधान के अनुच्छेद 239 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी केंद्र शासित प्रदेश के शासन के संबंध में अपने सभी या किसी भी कार्य को उस क्षेत्र के प्रशासक को सौंप सकता है। संविधान के अनुच्छेद 239 के खंड (1) के तहत भारत के राष्ट्रपति द्वारा केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के प्रशासक के पक्ष में अधिकार का एकमात्र प्रत्यायोजन 1 नवंबर, 1966 (अनुबंध 'बी') की अधिसूचना के आधार पर किया गया है, जो नवंबर के पहले दिन से ठीक पहले चंडीगढ़ में लागू किसी भी कानून के तहत "राज्य सरकार" की शक्तियों और कार्यों का निर्वहन करेगा। 1966. जबकि संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में राज्य सरकार की शक्तियां, जो केंद्र सरकार में निहित हैं, प्रशासक अर्थात चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त को इस प्रकार प्रत्यायोजित की गई हैं, राज्यपाल की शक्तियां जो भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं, अब तक चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त को प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं। इसलिए, मुख्य आयुक्त के पास चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश को नियुक्त करने का कोई अधिकार नहीं था।

(10) जिस केंद्रीय बिंदु के इर्द-गिर्द इन तर्कों का जाल बुना गया है, वह यह है कि संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) में "राज्यपाल" को "अपनी व्यक्तिगत क्षमता में राज्यपाल" के बराबर माना जाता है, न कि केवल उस राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में, जिसके नाम पर मंत्री सभी कार्यकारी आदेश पारित करते हैं। भारत सरकार अधिनियम, 1935 में, गवर्नर-जनरल और राज्यपालों द्वारा या तो अपने संबंधित व्यक्तिगत निर्णय (यानी, अपने विवेकाधिकार में) या उनके संबंधित मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के साथ कार्यकारी अधिकार के प्रयोग के बीच एक अंतर बनाए रखा गया था। उस भेद का एक हिस्सा संविधान में बरकरार रखा गया है। उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि भारत के राष्ट्रपति के कुछ संवैधानिक कार्य हैं जिन्हें संघ के कार्य नहीं कहा जा सकता है और इसलिए, उन्हें इस रूप में प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है। ***जयंतीलाल अमरतलाल शोधन* वी. *एफएन राणा और अन्य* ए.आई.आर. 1964 एससी. 648., (3)** निर्णय के लिए उठने वाले प्रश्नों में से एक उस क्षेत्र के बारे में था जिसमें संविधान के अनुच्छेद 258 का खंड (1) संचालित होता है। अनुच्छेद 258 (1) भारत के राष्ट्रपति को किसी ऐसे

(3) ए.आई.आर. 1964 एससी.
648.

मामले के संबंध में, जिस पर संघ की कार्यकारी शक्ति फैली हुई है, सशर्त या असंवैधानिक रूप से कार्य किसी राज्य सरकार या उसके अधिकारियों को सहमति से सौंपने के लिए अधिकृत करता है।

(3) ए.आई.आर. 1964 एससी.
648.

उस राज्य की सरकार की। संविधान के अनुच्छेद 258 (1) के दायरे पर चर्चा करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने संक्षेप में संविधान के विभिन्न प्रावधानों में निहित भारत के राष्ट्रपति के कार्यों या शक्तियों की एक सूची तैयार की, जो केंद्र सरकार की शक्तियां नहीं हैं, लेकिन संविधान द्वारा राष्ट्रपति में निहित हैं और प्रत्यायोजित होने में असमर्थ हैं या, किसी अन्य निकाय या प्राधिकरण को सौंपा गया। अनुच्छेद 123 के तहत अध्यादेश जारी करने, आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 268 से 279 के प्रावधानों को निलंबित करने, अनुच्छेद 356 के तहत राज्यों में संवैधानिक मशीनरी की विफलता की घोषणा करने, अनुच्छेद 360 के तहत वित्तीय आपातकाल घोषित करने, अनुच्छेद 309 के तहत नियम बनाने, अनुच्छेद 124 और 217 के तहत क्रमशः सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति, अनुच्छेद 344 के तहत आधिकारिक भाषाओं की समितियों को नियुक्त करने की शक्ति, अनुच्छेद 340 के तहत पिछड़े वर्गों की स्थितियों की जांच के लिए आयोग की नियुक्ति, अनुच्छेद 338 के तहत अनुसूचित जातियों, जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, आदि को राष्ट्रपति की संवैधानिक शक्तियों के रूप में माना गया था, जिन्हें किसी अन्य निकाय या अधिकारी को प्रत्यायोजित या सौंपा नहीं जा सकता है क्योंकि वे अनुच्छेद 258 के अंतर्गत नहीं आते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि यह कहना एक स्पष्ट भ्रम होगा कि उपर्युक्त संदर्भ में अनुच्छेद 258 (1) की सीमित सामग्री ऊपर उल्लिखित अनुच्छेदों द्वारा राष्ट्रपति को प्रदान की गई शक्तियों की प्रकृति के कारण है। इस बात पर जोर दिया गया कि उपरोक्त शक्तियों को अनुच्छेद 258 (1) के तहत प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है "क्योंकि वे संघ की शक्तियां नहीं हैं और उनके विशेष चरित्र के कारण नहीं हैं"" यह अनुच्छेद 258 (1) के शब्दों के कारण है जो उस खंड के तहत केवल ऐसे मामलों के संबंध में कार्यों को प्रत्यायोजित करने की शक्ति के दायरे को प्रतिबंधित करता है "जिन पर संघ की कार्यकारी शक्ति फैली हुई है। इसलिए, *जयंतीलाल अमरतलाल शोधन* (सुप्रा) (3) के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले में यह बताया गया था कि एक तरफ "संघ की कार्यकारी शक्ति" और भारत के राष्ट्रपति की संवैधानिक शक्तियों के बीच अंतर है जो प्रकृति में कार्यकारी भी हैं। वकील चाहते हैं कि हम *जयंतीलाल अमरतलाल शोधन के मामले* (3) में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों (भारत के राष्ट्रपति के दो प्रकार के कार्यों के बीच अंतर के बारे में) की समानता राज्यपाल की संस्था को भी दें, और यह मानें कि जिन मामलों में राज्य सरकार की कार्यकारी शक्ति फैली हुई है, वे संविधान के कुछ प्रावधानों द्वारा राज्यपाल को आवंटित कुछ विशेष संवैधानिक कार्यों से अलग हैं। यह तर्क दिया जाता है कि अगर हम राज्यपाल को प्रतिस्थापित करते हैं

* मनमोहन सिंह टंडन **बनाम** श्री मनमोहन सिंह गुजराल आदि।
(नरूला, जेजे

राष्ट्रपति के स्थान पर, अनुच्छेद 123 (अध्यादेश जारी करने की शक्ति से संबंधित) और अनुच्छेद 217 (एक ओर जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित और दूसरी ओर उच्च न्यायालय की नियुक्ति से संबंधित) के स्थान पर अनुच्छेद 213 को प्रतिस्थापित करें, सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियां राज्यपाल पर भी उतनी ही लागू होंगी, जितनी राज्यपाल पर लागू होती हैं, और इसलिए, हमें यह मानना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 233 (1) में 'राज्यपाल' शब्द का उपयोग राज्यपाल को उसके व्यक्तिगत निर्णय में राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल से अलग निरूपित करने के लिए किया गया है; किस मामले में, यह वकील द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, अभिव्यक्ति "राज्य सरकार"; संविधान सभा द्वारा इसका इस्तेमाल किया गया होगा। इस मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ की टिप्पणियां **राव बीरिंदर सिंह बनाम भारत संघ और अन्य *आई.एल.आर. (1969) 1 Pb. & Hry. 176, ए.आई.आर. 1968 Pb. & Hry: 441:*** उच्चतम न्यायालय के निर्णय का पालन करना जयंतीलाल अमरतलाल शोधन (3) मामला श्री खोजी ने भी उन पर भरोसा किया है। उस मामले में मेहर सिंह, सीजे (जिनके साथ मैं सहमत था) ने कहा कि अनुच्छेद 356 के तहत भारत के राष्ट्रपति की नियुक्ति अनुच्छेद 52, 73 और 77 में संदर्भित संघ की कार्यकारी शक्ति नहीं है। वकील ने तब सुप्रीम कोर्ट के फैसले का हवाला दिया **ज्योति प्रोकाश मित्तर बनाम माननीय न्यायमूर्ति एच. के. बोस, उच्च न्यायालय, कलकत्ता के मुख्य न्यायाधीश और एक अन्य *ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 961,*** जिसमें यह व्यवस्था दी गई थी कि संविधान के अनुच्छेद 217 का खंड (3) किसी न्यायाधीश की आयु के बारे में प्रश्न का निर्धारण करने का अधिकार केवल राष्ट्रपति में निहित करता है और उक्त कार्य का प्रयोग गृह मंत्रालय द्वारा भारत के राष्ट्रपति के नाम पर या किसी न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता है। ,

(11) इस विशेष प्रस्तुति के लिए ताकत भी मांगी गई है श्री खोजी द्वारा अनुच्छेद 233 के अधिनियमन के पीछे विधायी इतिहास से लिया गया है। उक्त विधायी इतिहास को पश्चिम बंगाल राज्य में उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप द्वारा पर्याप्त विस्तार से उजागर किया गया है । **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम नृपेंदर नाथ बागची, *ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 447***

* मनमोहन सिंह टंडन **बनाम** श्री मनमोहन सिंह गुजराल आदि।

(नरूला, जेजे

। एस्लिंगटन आयोग की 1912 की रिपोर्ट और भारत सरकार अधिनियम, 1919 की धारा 96-बी की उप-धारा (2) और उक्त अधिनियम की धारा 107 के प्रावधानों का उल्लेख करने के बाद, और यह इंगित करने के बाद कि 1919 अधिनियम के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों में नियुक्ति की शक्ति शामिल नहीं थी, पदोन्नति, स्थानांतरण या नियंत्रण

जिला न्यायाधीशों की संख्या के अनुसार, उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप ने सैलिसबरी के मार्किस के भाषण के कुछ अंशों का उल्लेख किया और फिर भारत में अधीनस्थ न्यायपालिका में नियुक्तियों से संबंधित संयुक्त संसदीय समिति की प्रासंगिक सिफारिश (पृष्ठ 201 पर पैराग्राफ 337) को उद्धृत किया। उक्त रिपोर्ट को उद्धृत करने के बाद, उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:-

> नतीजतन, जब भारत सरकार अधिनियम 1935 पारित किया गया था, तो इसमें जिला न्यायाधीशों और अधीनस्थ न्यायपालिका के संबंध में विशेष प्रावधान (धारा 254-256 पहले से उद्धृत) शामिल थे। यह ध्यान दिया जाएगा कि अधीनस्थ आपराधिक मजिस्ट्रेट को उच्च न्यायालयों के अधीन रखने का कोई तत्काल प्रयास नहीं किया गया था, लेकिन किसी प्रांत की अधीनस्थ न्यायिक सेवा से संबंधित व्यक्तियों की तैनाती और पदोन्नति और छुट्टी देने का अधिकार उच्च न्यायालय के हाथों में डाल दिया गया था, हालांकि नियमों में नामित किसी भी प्राधिकारी को अपील करने का अधिकार था और उच्च न्यायालयों को अधिनियम के अनुसार कार्य नहीं करने के लिए कहा गया था। नियमों द्वारा शुद्ध सेवा की शर्तें। जहां तक जिला न्यायाधीशों का संबंध है, जिला न्यायाधीश की तैनाती और पदोन्नति प्रांत के राज्यपाल द्वारा अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करते हुए की जानी थी और ऐसी नियुक्ति करने की सिफारिश राज्यपाल को प्रस्तुत करने से पहले उच्च न्यायालय से परामर्श किया जाना था। चूंकि भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 240 में यह प्रावधान था कि एक सिविल सेवक को उस प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त नहीं किया जाना था, जिसने उसे नियुक्त किया था, राज्यपाल भी बर्खास्त करने वाला प्राधिकारी था। भारत सरकार अधिनियम, 1935, जिला न्यायाधीश और अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं पर नियंत्रण के बारे में चुप था। धारा 224 के तहत उच्च न्यायालय का प्रशासनिक नियंत्रण, इसके अधीनस्थ न्यायालयों पर केवल परिगणित विषयों तक और उन पर अधीक्षण तक विस्तारित था। इस प्रकार अधीनस्थ न्यायपालिका और जिला न्यायाधीशों की स्वतंत्रता को कुछ हद तक सुनिश्चित किया गया था, लेकिन काफी नहीं।
>
> जब संविधान का मसौदा तैयार किया जा रहा था, तो 1935 के अधिनियम द्वारा की गई प्रगति दुर्भाग्य से गायब हो गई थी। संविधान के मसौदे में अधीनस्थ न्यायपालिका के संबंध में भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा किए गए विशेष प्रावधानों के समान कोई उल्लेख नहीं किया गया है।
>
> यदि यह बना रहता तो न्यायिक सेवाएं भारत में सेवाओं से संबंधित भाग XIV के अंतर्गत आ गई होतीं। सौभाग्य से एक संशोधन को स्वीकार कर लिया गया और अनुच्छेद 233 को 237 में शामिल किया गया। इन अनुच्छेदों को सेवाओं संबंधी अध्याय में नहीं बल्कि उच्च न्यायालयों के

संबंध में उपबंधों के तुरंत बाद रखा गया था। लेख भारत सरकार अधिनियम की संबंधित धाराओं की तुलना में थोड़ा आगे चले गए।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 254(1), जिसे **ऊपर उल्लिखित संयुक्त संसदीय समिति की सिफारिशों के अनुसरण में ब्रिटिश संसदीय द्वारा अधिनियमित किया गया था, निम्नलिखित शर्तों में थी** -

"व्यक्तियों की नियुक्ति, और उनकी पोस्टिंग और पदोन्नति? किसी भी प्रांत में जिला न्यायाधीशों को प्रांत के राज्यपाल द्वारा अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करते हुए बनाया जाएगा, और राज्यपाल को ऐसी किसी भी नियुक्ति के बारे में सिफारिश प्रस्तुत करने से पहले उच्च न्यायालय से परामर्श किया जाएगा।

ब्रिटिश संसद द्वारा पारित भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 की धारा 9 की उप-धारा (1) के खंड (ग) में यह प्रावधान किया गया है कि गवर्नर जनरल आदेश द्वारा ऐसा उपबंध करेगा जो उसे भारत सरकार अधिनियम, 1935 के भारत और पाकिस्तान के पृथक नए डोमिनियन पर लागू होने में चूक, परिवर्धन और अनुकूलन और संशोधन करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत होता है। इसमें 1935 के अधिनियम के अनंतिम अनुकूलन का प्रावधान किया गया है, जब तक कि संबंधित डोमिनियन की संविधान सभा द्वारा बनाए गए कानून के अनुसार अंतिम प्रावधान नहीं किया जा सकता है। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 9 (1), (सी) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, गवर्नर जनरल ने भारत (अनंतिम संवैधानिक) आदेश, 1947 को प्रख्यापित किया। उक्त आदेश के खंड 3 के उपखंड (2) में निम्नानुसार प्रावधान किया गया है :-

"निम्नलिखित अभिव्यक्तियों को छोड़ दिया जाएगा जहां भी वे होते हैं, अर्थात्; अपने विवेक से, 'अपने विवेक से कार्य करना' और 'अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करना'।

उक्त अनंतिम अनुकूलन के अनुसरण में, भारत सरकार अधिनियम की धारा 254 की उप-धारा (1) में राज्यपाल के अधिकार को अर्हता प्राप्त करने वाले "अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग" शब्दों को हटा दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह इस स्थिति के कारण था कि

उच्चतम न्यायालय ने *पश्चिम बंगाल राज्य और एक अन्य मामले में* टिप्पणी की थी/ *नृपेंद्र नाथ बागची,* (सुप्रा), 1(6), ने कहा कि यदि संविधान सभा ने संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 233 से 237 नहीं जोड़ा होता, तो वह 1935 के अधिनियम में ब्रिटिश संसद द्वारा उठाए गए एकमात्र कदम से पीछे हट जाती, जिसमें जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्यपाल पर छोड़ दी गई होती। श्री खोजी का निवेदन यह है कि 1935 के अधिनियम में उपर्युक्त प्रावधान ने राज्यपाल में "अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करते हुए" एक जिला न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्ति निहित की है ताकि

न्यायपालिका से संबंधित इस महत्वपूर्ण मामले को पूरी तरह से मंत्रियों के हाथों से बाहर रखा जा सके; और वह भी जब उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है (*पश्चिम बंगाल राज्य और एक अन्य मामले के निर्णय के उपर्युक्त अंश में*)। *नृपेंद्र नाथ बागची,* (सुप्रा), (6), कि संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 "भारत सरकार अधिनियम की संबंधित धाराओं की तुलना में थोड़ा आगे चले गए" न्यूनतम यह कहा जा सकता है कि भारत का संविधान राज्यपालों में जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति का अधिकार देने के मामले में भारत सरकार अधिनियम की धारा 254 को लागू करते समय ब्रिटिश संसद द्वारा उठाए गए कदम से पीछे नहीं हटा है। अपने व्यक्तिगत निर्णय में और राज्य सरकारों में नहीं; और यह कि भारत (अनंतिम संविधान) आदेश, 1947, संविधान के निर्माण तक चलने के लिए केवल एक अंतरिम उपाय था।

(12) संविधान के अनुच्छेद 233(1) के अनुच्छेद 23(1) के प्रावधानों के विधायी इतिहास और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 254 के अधिनियमन के पीछे के इतिहास के साथ-साथ पश्चिम बंगाल राज्य में उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप की टिप्पणियों और *अन्य* 55 *में भी इसे बनाए रखें।नृपेंद्र नाथ बागची* (सुप्रा), (6), और एक तरफ राज्यपालों की कुछ निर्दिष्ट संवैधानिक शक्तियों और दूसरी ओर राज्यपाल की अध्यक्षता वाली राज्य सरकार की कार्यकारी शक्तियों के बीच अंतर की गुंजाइश जैसा कि *जयंतीलाल अमृतलाल शोधन* बनाम एफ *में सुप्रीम कोर्ट द्वारा भारत के राष्ट्रपति के मामले में लाया गया है।एन राणा और अन्य,* (3) ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्रिपरिषद की सहायता से राज्यपाल द्वारा प्रशासित राज्यों में, राज्यपाल स्वयं संविधान द्वारा नामित नियुक्ति प्राधिकारी है और संविधान के अनुच्छेद 233 के खंड (1) द्वारा उसे सौंपे गए कार्यों को राज्य सरकार द्वारा केवल राज्यपाल के नाम पर निष्पादित नहीं किया जा सकता है; लेकिन जहां तक उन संघ राज्य क्षेत्रों का संबंध है जिनमें कोई परिषद नहीं है। जहां तक मंत्रियों का संबंध है, स्थिति भिन्न है। श्री खोजी का तर्क इस आशय का है कि संविधान के अनुच्छेद 233 में प्रयुक्त विशेष वाक्यांशविज्ञान के पीछे का इरादा

संविधान मंत्रियों को यथासंभव जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति से बाहर रखने के लिए है, ऐसे **संघ राज्य** क्षेत्र पर लागू नहीं होगा क्योंकि किसी भी मंत्रिस्तरीय हस्तक्षेप का कोई सवाल ही नहीं पैदा हो सकता है और यह भारत का राष्ट्रपति है जो या तो स्वयं या एक प्रशासक के माध्यम से उस सीमा तक प्रशासन करेगा जिस सीमा तक वह अपने कार्यों को ऐसे प्रशासक को सौंप सकता है।

(13) यह मुझे इस प्रश्न पर ले जाता है कि संघ राज्य क्षेत्र चंडीगढ़ के मामले में राज्यपाल कौन है। सत्य देव बुशहरी बनाम सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप के आधिकारिक फैसले को ध्यान में रखते हुए । **सत्य देव बुशहरी बनाम *पदम देव और अन्य* ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 587**, यह प्रश्न कोई कठिनाई प्रस्तुत नहीं करता है। उनके लॉर्डशिप ने उपरोक्त मामले में यह स्पष्ट कर दिया कि भारत के राष्ट्रपति, जो भाग 'सी राज्यों के कार्यकारी प्रमुख हैं (जैसा कि तब यूरियन टेरिटरीज वर्म कहा जाता है), केंद्र सरकार के कार्यकारी प्रमुख के रूप में कार्य नहीं करते हैं, बल्कि अनुच्छेद 239 के तहत विशेष रूप से निहित शक्तियों के तहत राज्य के प्रमुख के रूप में कार्य करते हैं। संघ शासित प्रदेशों को प्रशासित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 239 के तहत प्रदत्त अधिकार का उन राज्यों को केंद्र सरकार में परिवर्तित करने का प्रभाव नहीं है, और सर्वोच्च न्यायालय की पूर्वोक्त घोषणा के अनुसार, भारत के राष्ट्रपति **केंद्र शासित** प्रदेशों के संबंध में भाग 'ए' राज्यों में राज्यपाल के समान स्थान रखते हैं, और वह भाग 'ख' राज्यों में एक राजपरमुख का था। उन्होंने कहा कि यद्यपि वर्तमान संघ राज्य क्षेत्रों के **अनुरूप भाग सीटी राज्यों** को अनुच्छेद 239 के प्रावधानों के तहत केंद्र द्वारा प्रशासित किया जाता है, फिर भी वे राज्य नहीं रहते हैं, और केंद्र सरकार के साथ विलय नहीं होते हैं। उच्चतम न्यायालय की घोषणा का परिणाम यह है कि किसी राज्य के राज्यपाल पर संविधान द्वारा प्रदत्त कार्य सामान्य रूप से केंद्र शासित प्रदेश के मामले में भारत के राष्ट्रपति द्वारा किए जाते हैं। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि भारत के राष्ट्रपति उन कार्यों को सौंप नहीं सकते हैं। संविधान का अनुच्छेद 239 (1) विशेष रूप से भारत के राष्ट्रपति को एक प्रशासक के माध्यम से एक केंद्र शासित प्रदेश का प्रशासन करने के लिए अधिकृत करता है, जिसे उसके द्वारा नियुक्त किया जाएगा। भारत के राष्ट्रपति ने वास्तव में उपर्युक्त प्रावधान (रिट याचिका के अनुलग्नक 'बी') के तहत अधिसूचना जारी की है, जिसमें राज्य सरकार के कार्यों को सौंपा गया है, जो केंद्र शासित प्रदेश के संबंध में उन्हें चंडीगढ़ के प्रशासक को भी निहित करता है , जिसे केंद्र शासित प्रदेश के रूप में नामित किया

गया है।चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त। मैंने पहले ही कहा है कि चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति चंडीगढ़ के तत्कालीन मुख्य आयुक्त द्वारा उच्च न्यायालय के परामर्श से अपने स्वयं के हस्ताक्षर के तहत व्यक्तिगत रूप से की गई थी, क्योंकि एक केंद्र शासित प्रदेश का प्रशासन भारत के राष्ट्रपति में संविधान के अनुच्छेद 239 के तहत निहित है, इसलिए केंद्र शासित प्रदेश के संबंध में राज्य सरकार के साथ-साथ राज्यपाल की शक्तियां भी निम्नलिखित हैं: सभी व्यावहारिक प्रयोजनों का प्रयोग या तो भारत के राष्ट्रपति द्वारा या उनके प्रतिनिधि द्वारा उस सीमा तक किया जाना चाहिए जिस सीमा तक संविधान के अनुच्छेद 239 (1) के तहत ऐसी शक्तियां प्रत्यायोजित की जा सकती हैं।

(14) श्री जीके आई होजी ने कहा कि संघ राज्य क्षेत्र अधिनियम, (1963 का 20) के अनुसार संघ राज्य क्षेत्र चंडीगढ़ पर लागू नहीं होता *है* (उक्त अधिनियम की धारा 2 (एच) में निहित संघ राज्य क्षेत्र की परिभाषा के अनुसार), और केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त के आदेश को उस अधिनियम की धारा 46 के तहत अधिप्रमाणित नहीं किया जा सकता है। और भले ही भारत के राष्ट्रपति ने कामकाज के नियमों द्वारा या अन्यथा मुख्य आयुक्त के आदेश को प्रमाणित करने की शक्ति गृह सचिव को सौंप दी हो, लेकिन 1963 के संसद अधिनियम, 20 की धारा 46 को लागू न करने का प्रभाव यह है कि मुख्य आयुक्त के ऐसे आदेश उनके द्वारा नहीं किए जाने के बारे में हमले से अछूते नहीं हैं ; मुख्य आयुक्त स्वयं या भारत के राष्ट्रपति द्वारा। प्रमाणीकरण का यह सवाल वास्तव में वर्तमान जाति में नहीं उठता है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति, मुख्य आयुक्त द्वारा स्वयं की गई थी, न कि केवल उनके नाम पर।

(15) याचिकाकर्ता के वकील सर्ड सरदारिया अबनाशा * सिंह ने कहा कि केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के मामले को अन्य केंद्र शासित प्रदेशों की तुलना में पूरी तरह से अलग स्तर पर देखा जाना चाहिए क्योंकि यह पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा 4 द्वारा बनाया गया एक नवगठित राज्य है। प्रतिवादियों के वकील ने पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा 91 का उल्लेख किया, जो निम्नलिखित शब्दों में है: –

"केंद्र सरकार, जहां तक चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र या स्थानांतरित राज्यक्षेत्र का

संबंध है, और हरियाणा राज्य की सरकार, जैसा कि उसके राज्यक्षेत्रों का संबंध है, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उस प्राधिकारी, अधिकारी या व्यक्ति को निर्दिष्ट कर सकती है, जो नियत दिन पर और उसके बाद, ऐसे प्रयोग करने के लिए सक्षम होगा:

उस दिन लागू किसी भी कानून के तहत प्रयोग योग्य कार्य जैसा कि उस अधिसूचना में उल्लिखित किया जा सकता है और ऐसा कानून तदनुसार प्रभावी होगा ^'

और तर्क दिया कि यह केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के संबंध में केंद्र सरकार है जिसके पास प्राधिकरण, अधिकारी या व्यक्ति को निर्दिष्ट करने की शक्ति है, जो 1 नवंबर, 1966 (नियत दिन) से और प्रभावी है, ऐसे कार्यों का उपयोग करने के लिए सक्षम होगा जो उस दिन लागू किसी भी कानून के तहत प्रयोग करने योग्य हैं जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में उल्लेख किया जा सकता है। सरदार अबनाशा सिंह का तर्क यह है कि केंद्र सरकार ने अधिसूचना (अनुबंध 'बी') जारी की है, जिसमें चंडीगढ़ के मुख्य आयुक्त को राज्य सरकार के सभी कार्यों का उपयोग करने वाले अधिकारी के रूप में नामित किया गया है, मुख्य आयुक्त द्वारा प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति पूरी तरह से अधिकृत है। यहां तक कि पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा 91 के प्रावधानों के बावजूद, भारत के राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 239 (1) के तहत मुख्य आयुक्त को केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के प्रशासन के संबंध में अपनी शक्तियां प्रत्यायोजित कर सकते हैं और कर चुके हैं। इसलिए, हम चंडीगढ़ के जिला न्यायाधीश के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 की नियुक्ति में कोई अमान्य ता खोजने में असमर्थ हैं।

(16) इस मामले में हमारे सामने कोई अन्य बिंदु नहीं दिया गया है, रिट याचिका विफल हो जाती है और खारिज कर दी जाती है, लेकिन उठाए गए सवालों की प्रकृति और मामले की अजीब परिस्थितियों को देखते हुए, हम इस न्यायालय में इन कार्यवाहियों की लागत के बारे में कोई आदेश नहीं देते हैं।

एस.बी. कपूर, जे- मैं सहमत हूं।

के.एस.के.

अस्वीकरण :

स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका

उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

चिनार बाघला

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee JudicialOfficer)

अंबाला,हरियाणा